

इकाई 4 भारत एक उभरता हुआ राष्ट्र-राज्य

संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भारत एक उभरता हुआ राष्ट्र-राज्य: एक दृष्टि

4.4 जनतंत्र की प्रकृति एवं विशेषताएं

4-5 धर्मनिरपेक्षता की प्रकृति एवं विशेषताएं

4.6 संघीय संरचना : संघीय संरचना में शैक्षिक व्यवस्था व उत्तरदायित्व

4.7 सारांश

4.8 प्रगति की जांच

499 सन्दर्भ सूचि

4.1 प्रस्तावना

राष्ट्रवाद एक नितान्त आधुनिक अवधारणा है। यह राष्ट्र-राज्य की निर्मिति से जुड़ा है। लोकतंत्रीय विकास की एक अवस्था में राज्य स्वयं ही राष्ट्र बन जाते हैं। ऐसे राष्ट्रवाद का अर्थ है राज्य के प्रति व्यक्ति की औपचारिक आसक्ति। इस अर्थ में राज्य का प्रत्येक नागरिक या प्रजा राष्ट्रीयता की परिधि में आ जाते हैं – चाहे उसकी भाषा कुछ भी हो या उसकी वंश परंपरा का उद्भव कहीं से भी हुआ हो। एक निश्चित भूखंड एवं एक आम राजनीतिक एवं आर्थिक रूपवाली जनता के समुदाय के बीच एकत्व के मनोवैज्ञानिक एहसास के साथ ही राष्ट्रीय पहचान अस्तित्व में आयी। एकत्व की यह प्रक्रिया जनता के आम रस्मों-रिवाज तथा परंपरा से और तीव्र हो गयी। राष्ट्रवाद को आधुनिकतावाद और उसके परिणामों के समरूप समझा जाता रहा है। इस अर्थ में यह पुरानी व्यवस्था को भंग करने वाली शक्ति है। इसका कारण या तो आधुनिक युग के विकास का सूत्रपात करने वाले विचारों का प्रसार हो सकता

है या उन परिस्थितियों का प्रसार, जिन्हें आधुनिकतावाद से सम्बद्ध किया जाता है, अर्थात् साक्षरता का प्रसार, मुद्रा की अर्थव्यवस्था, बढ़ते हुए संचार माध्यम और नगरों का विकास। संविधान के अनुसार भारत संप्रभु, समाजवादी लोकतान्त्रिक और धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है। धर्म-निरपेक्षता राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है, जो किसी धर्म विशेष को राज्य-धर्म के रूप में मान्यता नहीं प्रदान करता है। यह ऐसा समाज है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को मानने, आचरण करने तथा प्रचार करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। इस प्रकार समाज-व्यवस्था सर्व धर्म सद्भाव पर आधारित है। कोई भी देश केवल किसी आदर्श के सामने रखने मात्र से उस आदर्श को ग्रहण किया हुआ नहीं माना जा सकता। आदर्श ग्रहण के लिये, आदर्श के अनुरूप नागरिकों के व्यवहार में रूपान्तरण करना होगा। व्यवहार-रूपान्तरण के लिये शिक्षा एक सशक्त साधन है। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली एक ऐसे राष्ट्रीय ढांचे पर आधारित है, जिसमें अन्ये लचीले एवं क्षेत्र विशेष के लिए तैयार घटकों के साथ ही एक समान पाठ्यक्रम रखने का प्रावधान है। जहां एक ओर शिक्षा नीति लोगों के लिए अधिक अवसर उपलब्ध कराए जाने पर जोर देती है, वहीं वह उच्च एवं तकनीकी शिक्षा की वर्तमान प्रणाली को मजबूत बनाने का आह्वान भी करती है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र –

1. भारत के राष्ट्र राज्य के रूप में उभरते स्वरूप को समझ सकेंगे
2. धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण तत्वों को जान सकेंगे
3. लोकतंत्र की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे
4. जनतंत्रीय शिक्षा के उद्देश्यों को जान पायेंगे
5. संविधान में धर्मनिरपेक्षता के लिए किये गए प्रावधानों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
6. भारत की संघीय संरचना को समझ सकेंगे
7. शासन द्वारा शैक्षिक व्यवस्था व उत्तरदायित्व के कार्यों से परिचित हो सकेंगे

4.3 भारत एक उभरता हुआ राष्ट्र-राज्य: एक दृष्टि

प्राचीन काल से ही किसी भू-भाग, क्षेत्र, प्रदेश अथवा राष्ट्र को इंगित करने के लिए राज्य' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। आज भी हम अक्सर राज्य' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में करते हैं जैसे

क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक इकाइयों को संबोधित करने हेतु। यहां तक कि भारत का संविधान स्वयम् भारत को 'राज्यों का एक संघ' घोषित करता है। किन्तु सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो 'राज्य' का प्रयोग केवल संप्रभुता संपन्न इकाइयों के लिये ही किया जाना चाहिये। राजनीतिक सिद्धांत की दृष्टि से राज्य से आशय है 'ऐसा जनसमूह जो एक निश्चित भू भाग में निवास करता है, जिसकी अपनी सरकार है, जो संप्रभु है अर्थात् अन्य संस्थाओं से सर्वोपरि है, आंतरिक तथा बाह्य नियंत्रणों से मुक्त है और जिसकी आज्ञा मानने के लिए लोग कानूनी तौर पर बाध्य है'। एक राष्ट्र-राज्य से अभिप्राय वे राजनैतिक संस्थाएं हैं जो राज्य (एक कानूनी संकल्पना) तथा राष्ट्र एक (ऐतिहासिक संकल्पना) दोनों को मिलाती हैं। इसमें राजनैतिक कार्यकर्ताओं का स्तर कानून-निर्माता तथा दोनों से ही भिन्न होता है।

राज्य एवं समाज का विकास मनुष्य की बदलती आवश्यकताओं के साथ-साथ हुआ है। राजनैतिक स्वरूप में ऐतिहासिक तौर पर राष्ट्र, राज्य एवं समाज को एक ही समझा जाता था। अरस्तू ने अपनी किताबों में कोईनोनिया शब्द का उपयोग इन तीनों के लिए एक ही साथ किया है। प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों के चिंतन का एक मुख्य बिंदु भी राज्य एवं समाज के बीच अध्ययन से अधिक व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक एवं राजनैतिक-सामाजिक स्तरों में भेद था। अरस्तू के अनुसार, "मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अलग-अलग संगठनों का निर्माण करता है। परंतु इन सभी संगठनों में राज्य एक सर्वोच्च संस्था है। राज्य मनुष्य के कल्याण के लिए अस्तित्व में आता है। राज्य पूरे समाज के विकास के लिए अस्तित्वमान है तथा उसका यही उद्देश्य उसे उन अन्य सारे संगठनों जैसे परिवार से अलग बनाता है जो पुरुष एवं महिलाओं की रोजमर्रा की आवश्यकता के लिए अस्तित्व में आते हैं। कुछ घरों का समूह मिलकर एक गांव तथा कुछ गांव मिलकर नगर-राज्य का निर्माण करते हैं। नगर-राज्य मनुष्यों की राजनैतिक एवं आर्थिक समानता के प्रतीक हैं। राज्य का प्राकृतिक संगठन है क्योंकि मनुष्य से एक राजनैतिक प्राणी है।" अरस्तू के अनुसार, "जिस मनुष्य को राज्य की आवश्यकता महसूस नहीं होती वह या तो भगवान है या जानवर।" मार्क्स के अनुसार, राज्य न तो कोई प्राकृतिक संस्था है न ही कोई स्वायत्त संस्था। यद्यपि समाज की प्रकृति एक स्थायी संस्था की है। समाज के विकास के क्रम में ही राज्य का उदय होता है और यह अपने विकास की कुछ अवस्थाओं को पार करके लुप्त हो जाता है।

वस्तुतः परंपरागत समुदाय अपनी आवश्यकताओं के लिए स्वावलंबी एवं स्वतंत्र थे। उनका आपसी संबंध सीमित था। ये समुदाय छोटे-छोटे समूह में स्वतंत्र थे। जबकि आधुनिक समाज विविध एवं विशिष्ट संस्थाओं से परिचालित होता है। व्यक्ति बड़ी संख्या में, अवैयक्तिक समूह में एवं श्रम के जटिल वर्गों में बंधा हुआ है। आधुनिक समाज बड़े औद्योगिक उत्पादन एवं बाजारोन्मुख कृषि पर आधारित है। परंपरागत समाज का आधुनिक समाज में रूपांतरण कमोवेश कष्टकारी रूपान्तरण रहा है। ए. डी. स्मिथ ने रूपांतरण के तीन परिणामों (और प्रक्रिया भी) का जिक्र किया है

(क) समाज में विशिष्ट एवं विशेषज्ञ संस्थाओं का जन्म होना

(ख) आधुनिकीकरण ऐसी व्यवस्था का सृजन करता है जो समाज में नए वर्ग पैदा करते हैं, तथा

(ग) नये वर्ग अधिक पारदर्शी होते हैं।

इस प्रकार लोकतंत्रीय विकास की एक अवस्था में राज्य स्वयं ही राष्ट्र बन जाते हैं। ऐसे राष्ट्रवाद का अर्थ है राज्य के प्रति व्यक्ति की औपचारिक आसक्ति। इस अर्थ में राज्य का प्रत्येक नागरिक या प्रजा राष्ट्रीयता की परिधि में आ जाते हैं। एक निश्चित भूखंड एवं एक आम राजनीतिक एवं आर्थिक रूपवाली जनता के समुदाय के बीच एकत्व के मनोवैज्ञानिक एहसास के साथ ही राष्ट्रीय पहचान अस्तित्व में आयी। एकत्व की यह प्रक्रिया जनता के आम रस्मों—रिवाज तथा परंपरा से और तीव्र हो गयी।

राष्ट्रीयता मूलतः पूँजीवादी समाज—व्यवस्था का ही लक्षण है। 19वीं सदी को राष्ट्रवाद का युग माना जाता है। इस समय प्रत्येक राज्य राष्ट्र—राज्य की आधार—भूमि पर खड़े होते हैं और यह धारणा बलवती होती है कि प्रत्येक राष्ट्रीयता का अपना अलग राज्य होना चाहिए। मध्य युग में सभ्यता का निर्धारक तत्व धर्म था, राष्ट्रीयता नहीं। राष्ट्रवाद को आधुनिकतावाद और उसके परिणामों के समरूप समझा जाता रहा है। इस अर्थ में यह पुरानी व्यवस्था को भंग करने वाली शक्ति है। इसका कारण या तो आधुनिक युग के विकास का सूत्रपात करने वाले विचारों का प्रसार हो सकता है या उन परिस्थितियों का प्रसार, जिन्हें आधुनिकतावाद से सम्बद्ध किया जाता है, अर्थात् साक्षरता का प्रसार, मुद्रा की अर्थव्यवस्था, बढ़ते हुए संचार माध्यम और नगरों का विकास। पश्चिमी देशों में राष्ट्रवाद को ऐसी धारणाओं का समूह माना गया जिनमें मूल विचार राष्ट्र—राज्य पर केन्द्रित है। इसलिए राष्ट्रवाद का अध्ययन, मुख्यतः किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के समूह के विचारों का, अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों तक पहुंचने की प्रक्रिया का अध्ययनरत है। राष्ट्रवाद का संबंध राष्ट्र के स्वरूप से है। मध्य—युग में राजनीतिक निष्ठा धर्माधारित था

19वीं—20वीं सदी के राष्ट्र—राज्य एक केन्द्रिक राष्ट्र—राज्य थे। 1960 के बाद लगभग राष्ट्र—राज्यों की यह केन्द्रियता टूटने लगती है। अब उसे किसी खास संस्कृति, परंपरा या वर्ग का संगठन नहीं, बल्कि जन का संगठन होना है। ऐसा माना जा रहा है। आधुनिक राष्ट्र जन—राष्ट्र हैं। जहां प्रत्येक व्यक्ति नागरिक है और सैद्धांतिक रूप में प्रत्येक नागरिक समान अधिकार रखते हैं। राष्ट्र का कानून सब पर समान रूप से लागू होता है एवं सिद्धांततः नागरिक एवं राष्ट्र के बीच कोई माध्यम स्वीकार नहीं किया जाता। राष्ट्र—राज्यों के निर्माण की प्रक्रिया को देखते हुए कहा जा सकता है कि हर राष्ट्र कुछ खास वर्गों, कुछ भाषाई—इलाकाई—सांस्कृतिक समुदायों के हित में बनता है, और कुछ की ही मांगों को पूरा करने की मुहिम—सा बनकर रह जाता है। राष्ट्र एक आधुनिक अवधारणा है। यह आधुनिक पूँजीवाद, औद्योगिकरण, जन—संचार माध्यम और धर्मनिरपेक्षता का परिणाम है। बार्कर के अनुसार "राष्ट्र

ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो किसी निश्चित प्रदेश में निवास करता हो. और जिसमे एक ही प्रदेश में प्रवास करने के कारण पारस्परिक प्रेम हो.”

4.3 अधिगम क्रियाकलाप

1^० राष्ट्र एवं राज्य की भिन्नताओं को सूचीबद्ध कीजिये.

बोध प्रश्न

टिपण्णी क) अपने उत्तर नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए.

[1] अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाईये.

1^० “जिस मनुष्य को राज्य की आवश्यकता महसूस नहीं होती वह या तो भगवान है या जानवर।”
यह किसका कथन है.

.....
.....

4.4 जनतंत्र की प्रकृति एवं विशेषताएं

जनतंत्रीय व्यवस्था वह है जिसमें जनता की संप्रभुता हो। जनतंत्र की परिभाषा का प्रश्न है तो अब्राहम लिंकन की परिभाषा – जनतंत्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन – प्रामाणिक मानी जाती है। जनतंत्र में जनता ही सत्ताधारी होती है, उसकी अनुमति से शासन होता है, उसकी प्रगति ही शासन का एकमात्र लक्ष्य माना जाता है। परंतु जनतंत्र केवल एक विशिष्ट प्रकार की शासन प्रणाली ही नहीं है वरन् एक विशेष प्रकार के राजनीतिक संगठन, सामाजिक संगठन, आर्थिक व्यवस्था तथा एक नैतिक एवं मानसिक भावना का नाम भी है। जनतंत्र जीवन का समग्र दर्शन है जिसकी व्यापक परिधि में सभी मानवीय पहलू आ जाते हैं। जनतंत्र जनता की सरकार है, अतः जनतंत्र में जनशिक्षा को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। जनशिक्षा सभी नागरिकों के लिए होती है। जनतंत्र में शिक्षा बालकेंद्रित होती है क्योंकि जनतंत्र में मानव के व्यक्तित्व का आदर किया जाता है। इसलिए जनतंत्रीय शिक्षा में

बालक की आवश्यकताओं, क्षमताओं, रुचियों एवं योग्यताओं आदि को आधार बनाया जाता है। बालक की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रदान की जाती है। इस संदर्भ में हुमायूँ कबीर ने लिखा है कि “यदि जनतंत्र को सच्चे अर्थ में प्रभावशाली बनाना है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने पूर्ण विकास की ग्यारंटी करनी है तो शिक्षा सार्वभौमिक एवं निःशुल्क होनी चाहिए।

जनतन्त्र की मूल विशेषताएं

1) **स्वतन्त्रता** – स्वतन्त्रता जनतन्त्र की आत्मा है। स्वतन्त्रता के अभाव में व्यक्ति अपनी पूर्ण शक्तियों को विकसित नहीं कर सकता। अतः प्रत्येक व्यक्ति को जीवन सम्बन्धी प्रत्येक समस्या के विषय में अपने निजी ढंग से सोचने, विचार करने, लिखने, भाषण देने, वाद-विवाद करने, अपनी सम्मति देने तथा आलोचना करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। ध्यान देने की बात है कि स्वतन्त्रता का अर्थ केवल अपनी इच्छाओं को दूसरों के हितों की उपेक्षा करके अपने निजी ढंग से सन्तुष्ट करना नहीं है। इस प्रकार की उच्छृंखल, निरंकुश तथा अनियन्त्रित स्वतन्त्रता से लाभ के स्थान पर हानि होने का भय है। चूँकि अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्य भी हैं, इसलिए स्वतन्त्रता का उचित अर्थ व्यक्ति का विकास समूह द्वारा तथा समूह के लिए है।

2) **समानता** – जनतन्त्र की दृष्टि में सभी व्यक्ति समान होते हैं। ऐसे समाज में रंग-रूप, जन्म, जाति, धर्म, वर्ग तथा लिंग का कोई भेद-भाव नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु स्वतन्त्र एवं समान अवसर प्रदान किये जाते हैं। ध्यान देने की बात है कि समान अवसर प्रदान करने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि सबको एक से अवसर मिलें। व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धान्त के अनुसार कोई भी दो व्यक्ति एक से नहीं हो सकते। सबमें कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होता है। अतः जनतन्त्र में समानता का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचियों, योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार विकास की पूरी-पूरी सुविधायें प्राप्त हों। इस दृष्टि से आवश्यक योग्यतायें होने पर कोई भी व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार किसी भी व्यवसाय को चुन सकता है। समाज का कोई भी अन्य व्यक्ति उसके रास्ते में बाधक नहीं हो सकता।

3) **बन्धुत्व** – सच्चे जनतन्त्र की कुंजी है – बन्धुत्व की भावना। जनतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति मेल-जोल से रहता है। इससे प्रत्येक व्यक्ति का समाज में सम्मान होता है। उसे अधिकार है कि वह समाज की गति के लिए अपना यथाशक्ति योगदान दे। चूँकि जनतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य करता है, इसलिए यह कहना उचित ही होगा कि जनतन्त्रीय समाज में बन्धुता की भावना अथवा आपसी भाई-चारे से रहना जनतन्त्र का महान सिद्धान्त है।

4) **न्याय** – यूँ तो फ्रांस की क्रान्ति ने हमारे सामने जनतन्त्र के उपर्युक्त तीन ही सिद्धान्त रखे हैं, परन्तु भारत में न्याय के सिद्धान्त को और जोड़ दिया गया है। इसका कारण यह है कि जनतन्त्र की

सफलता के लिए न्याय का होना परम आवश्यक है। इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक संस्थाओं द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के अवसर की समानता प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, कानून की दृष्टि से निर्धन तथा धनवान सब बराबर हैं तथा अपने-अपने अधिकारों और कर्तव्यों का प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्र हैं। रंग-रूप, जाति तथा धर्म एवं लिंग आदि के आधार पर किसी व्यक्ति को न्याय प्राप्त करने से नहीं रोका जा सकता।

4.4 अधिगम क्रियाकलाप

1. छात्रों में जनतंत्र के मूल्यों का विकास करने के लिए कौन से क्रियाकलाप कराये जा सकते हैं ?

बोध प्रश्न

टिपण्णी

क) अपने उत्तर नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए.

[1] अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाईये.

2^o जनतन्त्र की मूल विशेषताएं कौन सी हैं ?

.....

.....

.....

.....

4.5 धर्मनिरपेक्षता की प्रकृति एवं विशेषताएं

भारतीय संविधान में देश को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है। अतः भारत हमेशा से ही एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के स्वरूप में ही प्रस्तुत है। वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार – “धर्म निरपेक्षता वह तत्त्व है,

जिसके अनुसार राज्य के कार्यों में धर्म तथा धार्मिक कार्यों का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। “धर्मनिरपेक्षता अति उच्चस्तरीय धार्मिक व्यापकता तथा सहिष्णुता है, जो किसी संकीर्ण धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित न होकर सहनशीलता, स्वतंत्रता, धैर्य, मानवीयता व सार्वभौमिक भातृत्वभाव पर आधारित है।

उपर्युक्त विवेचना से भारतीय धर्म—निरपेक्ष राज्य—व्यवस्था के बारे में निम्नांकित बातें स्पष्ट होती हैं —

- 1) राज्य किसी धर्म विशेष को आश्रय/संरक्षण नहीं प्रदान करता है।
- 2) सभी धर्मों को समानता की दृष्टि से देखते हुए उनके मानने, प्रचार करने आदि की स्वतन्त्रता देता है।
- 3) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने, प्रचार करने का अधिकार देता है।
- 4) धार्मिक संस्थाओं के प्रबन्ध की स्वतन्त्रता प्रदान करता है।
- 5) धार्मिक संस्थाओं न्यासों को धार्मिक शिक्षा की स्वतन्त्रता देता है।
- 6) किन्तु राज्य पोषित एवं राज्य से अनुदान प्राप्त संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा की इजाजत नहीं देता।

इस प्रकार वर्तमान भारतीय समाज को पूर्णरूपेण धर्म—निरपेक्ष समाज बनाने के लिये सभी प्रावधान किये हैं, जिससे कि हमारे बहुधर्मी समाज में सर्व धर्म सद्भाव के माध्यम से समन्वित समाज—व्यवस्था स्थापित हो सके।

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की विशेषताएं —

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की निम्न विशेषताएं हैं —

- 1) धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का कोई धर्म नहीं होता है।
- 2) धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र सभी धर्मों का समान आदर करता है।
- 3) धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र किसी भी नागरिक से धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता।
- 4) धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र धर्म के गलत प्रयोग पर हस्तक्षेप करता है।
- 5) धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बिना किसी धर्म के भेदभाव के सभी नागरिकों के कल्याण के लिए कार्य करता है।

6) धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में नागरिक किसी भी धर्म को अपनाने के लिए स्वतंत्र है।

इस समाज-व्यवस्था की पृष्टि के लिये संविधान में निम्नलिखित प्रावधान किये गये हैं –

1. **संविधान के अनुच्छेद 25 से 28** – ये इसी उद्देश्य से शामिल किये गये थे कि राज्य का धर्म/धर्मों के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाए। ये उपलब्ध एक ओर जहाँ प्रस्तावना में दी गई विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता का विस्तार है, वहाँ दूसरी ओर राज्य को धर्म विशेष से दूर रखने की ओर प्रयास भी है।

2. **अनुच्छेद 25 (1)** – इसमें सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता तथा धर्म के अबाध रूप से मनाने, आचरण करने का अधिकार है।

पद्ध राज्य कानून बनाकर निम्नलिखित आधारों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है।

पपद्ध धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक क्रियाओं को नियमित एवं प्रतिबन्धित करने के लिये।

पपपद्ध सामाजिक कल्याण और सुधार के लिये।

उपर्युक्त अनुच्छेद में निम्नांकित तीन वाक्यांश शामिल हैं –

अ) **अन्तःकरण की स्वतन्त्रता** – इसमें वह आंतरिक स्वतन्त्रता शामिल है, जिसमें व्यक्ति अपने विश्वास, इच्छानुसार ईश्वर से सम्बन्ध स्थापना के लिये स्वतन्त्र है।

ब) **धर्म का मानना एवं आचरण करना है** – यह प्रथम का बाह्य रूप है, जिसमें धर्म विशेष द्वारा बताये गये कर्तव्यों, कर्मकाण्डों और धार्मिक कृत्यों को प्रदर्शित करने की स्वतन्त्रता है किन्तु यह सब सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार एवं जनता के स्वास्थ्य के अनुरूप ही होगा।

स) **धर्म का प्रचार करना** – इसमें अपने विचारों को दूसरों तक सम्प्रेषित करना, प्रकाशित करना, बिना दबाव के उन्हें मनवाने के लिये दूसरों को समझाना-बुझाना शामिल है, किन्तु बलात् धर्म-परिवर्तन के लिये बाध्य करना शामिल नहीं है।

3. **(अनुच्छेद 26)** – प्रचार, प्रसार एवं धार्मिक आचरण हेतु धार्मिक संस्थाएँ चाहियें। इन संस्थाओं के प्रबन्ध की स्वतन्त्रता के बिना, धार्मिक स्वतन्त्रता अधूरी ही रहती है। अतः इन स्वतन्त्रता का प्रावधान किया गया जिसका अर्थ है –

पद्ध धार्मिक कार्यों की पूर्ति हेतु संस्थाओं की स्थापना एवं उनका संचालन।

पपद्ध धार्मिक कार्यों सम्बन्धी विषयों का प्रबन्ध करना।

पपपद्ध उक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु चल, अचल सम्पत्ति का अर्जन करना।

पअद्ध धर्म विशेष की उन्नति के लिये राज्य द्वारा कर नहीं लगाना। (अनुच्छेद 27)।

यह अनुच्छेद यह उपबन्धित करता है कि किसी भी व्यक्ति को किसी विशेष धर्म अथवा सम्प्रदाय की उन्नति के लिये कर देने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा। इससे राज्य की धर्म निरपेक्षता और अधिक स्पष्ट हो जाती है।

4. अनुच्छेद (28) – यह राज्य पोषित शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक-शिक्षा या उपासना का निषेध करता है और निम्नांकित उपबन्ध करता है –

पद्ध राज्य-निधि से पूरी तरह से पोषित किसी शिक्षा-संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी।

पपद्ध राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य-कोष से पोषित होने वाली शिक्षा संस्था में किसी व्यक्ति को धार्मिक शिक्षा या उपासना में भाग लेने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 28 में चार प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं का उल्लेख है –

- अ) राज्य द्वारा पूरी तरह पोषित (सरकारी शिक्षण संस्थाएँ)
- ब) राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त।
- स) राज्य से अनुदान प्राप्त।
- द) किसी धर्मस्व या न्यास के अधीन स्थापित।

प्रथम प्रकार की संस्थाओं में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। दूसरी एवं तीसरी प्रकार की संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है बशर्ते इसके लिये अभिभावक एवं छात्र की सहमति हो। चौथे प्रकार की संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने के बारे में कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

4.5 अधिगम क्रियाकलाप

1प अपने क्षेत्र में स्थित सर्वधर्म समभाव के कुछ उदाहरणों को एकत्रित कर उन्हें सुचिबद्ध कीजिये.

बोध प्रश्न

टिपण्णी

क) अपने उत्तर नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए.

[1] अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाईये.

3^प किस अनुच्छेद के अनुसार राज्य पोषित शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक-शिक्षा या उपासना का निषेध करता है

.....
.....
.....

4.6 संघीय संरचना : संघीय संरचना में शैक्षिक व्यवस्था व उत्तरदायित्व

अंग्रेजी भाषा के "फेडरल" शब्द का उद्भव अंग्रेजी भाषा के "फोग्रिड्स" शब्द से है. जिसका अर्थ है "लीग". संघीय प्रणाली में सरकारी प्राधिकार विहिन्न वर्गों में विभाजित होते हैं. विश्व का सबसे बृहत लोकतंत्र भारत एक संसदीय लोकतंत्र और एक संघीय राज्य माना जाता है. भारत राज्यों का एक संघ है. संविधान के अनुसार भारत संप्रभु, समाजवादी लोकतान्त्रिक और धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है.

संघीय संरचना में शैक्षिक व्यवस्था व उत्तरदायित्व

सन् 1976 से पूर्व शिक्षा पूर्ण रूप से राज्यों का उत्तरदायित्व था। संविधान द्वारा 1976 में किए गए जिस संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया, उस के दूरगामी परिणाम हुए। आधारभूत, वित्तीय एवं प्रशासनिक उपायों के द्वारा राज्यों एवं केन्द्र सरकार के बीच नई जिम्मेदारियों को बांटने की आवश्यकता महसूस की गई। जहां एक ओर शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों की भूमिका एवं उनके उत्तरदायित्व में कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ, वहीं केन्द्र सरकार ने शिक्षा के राष्ट्रीय एवं एकीकृत स्वरूप को सुदृढ़ करने का गुरुतर भार भी स्वीकार किया। इसके अंतर्गत सभी स्तरों पर शिक्षकों की योग्यता एवं स्तर को बनाए रखने एवं देश की शैक्षिक जरूरतों का आकलन एवं रखरखाव शामिल है।

केंद्र सरकार ने अपनी अगुवाई में शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रम बनाने और उनके क्रियान्वेयन पर नजर रखने के कार्य को जारी रखा है। संशोधित नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढ़शिक्षा कार्यक्रम को जनांदोलन बनाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने, बुनियादी (प्राथमिक) शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने, बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने, देश के प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे आधुनिक विद्यालयों की स्थापना करने, माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रकार की जानकारी देने और अंतर अनुशासनिक अनुसंधान करने, राज्यों में नए मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना करने, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद को सुदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं एक सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने के प्रयास शामिल हैं। एनपीई द्वारा निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली एक ऐसे राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचे पर आधारित है, जिसमें अन्या लचीले एवं क्षेत्र विशेष के लिए तैयार घटकों के साथ ही एक समान पाठ्यक्रम रखने का प्रावधान है। जहां एक ओर शिक्षा नीति लोगों के

लिए अधिक अवसर उपलब्ध कराए जाने पर जोर देती है, वहीं वह उच्च एवं तकनीकी शिक्षा की वर्तमान प्रणाली को मजबूत बनाने का आह्वान भी करती है।

केंद्रीय शिक्षा परामर्शदाता बोर्ड (सीएबीई) शिक्षा के क्षेत्र में केंद्रीय और राज्य सरकारों को परामर्श देने के लिए गठित सर्वोच्च संस्था है। सीएबीई के परामर्श पर महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए हैं और शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर व्यापक विचार-विमर्श एवं परीक्षण हेतु इसने एक मंच उपलब्ध कराया है, देश में हो रहे सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों एवं राष्ट्रीय नीति की समीक्षा की वर्तमान जरूरतों को देखते हुए सीएबीई की भूमिका और भी बढ़ जाती है। अतः यह महत्व- का विषय है कि केंद्र और राज्य सरकारें, शिक्षाविद एवं समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधि आपसी विचार-विमर्श बढ़ाएं और शिक्षा के क्षेत्र में निर्णय लेने की ऐसी सहभागी प्रक्रिया (प्रणाली) तैयार करें, जिससे संघीय ढांचे की हमारी नीति को मजबूती मिले। राष्ट्रीय नीति 1986 (जैसा कि 1992 में संशोधित किया गया) में भी यह प्रावधान है कि शैक्षिक विकास की समीक्षा करने तथा व्यवस्थाएं एवं कार्यक्रमों पर नजर रखने के लिए आवश्यक परिवर्तनों को निर्धारण करने में भी सीएबीई की महत्वपूर्ण भूमिका। यह मानव संसाधन विकास के विभिन्न क्षेत्रों में आपसी तालमेल एवं परस्पर संपर्क सुनिश्चित करने के लिए तैयार की गई उपयुक्त प्रणाली के माध्यम से अपना कार्य करेगा। कुछ ऐसे संवेदनशील मुद्दों पर विशेष विचार-विमर्श करने की आवश्यकता महसूस की गई। तदनुसार निम्न लिखित विषयों के लिए सीएबीई की सात समितियां बनाई गईं हैं

- निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक तथा प्राथमिक शिक्षा से जुड़े अन्य मामले
- बालिका शिक्षा तथा एक समान स्कूल प्रणाली
- एक समान माध्यमिक शिक्षा
- उच्च शिक्षा संस्थाओं को स्वायत्तता
- स्कूल पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक शिक्षा का एकीकरण
- सरकार-संचालित प्रणाली के बाहर चल रहे स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकों एवं समानांतर पाठ्य पुस्तकों के लिए नियामक व्यवस्था
- उच्च एवं तकनीकी शिक्षा को वित्तीय सहायता देना।

उपर्युक्त शिक्षा व्यवस्था के लिए समितियों का गठन में किया गया। इनसे मिली रिपोर्टों पर 14-15 जुलाई, 2005 को नई दिल्ली में हुई सीएबीई की 53वीं बैठक में विचार-विमर्श किया गया। इन सभी प्राप्त रिपोर्टों से उभरे कार्य-बिंदुओं की पहचान करने तथा उन पर एक निश्चित कार्यावधि में अमल करने के लिए कार्य-योजना तैयार करने के आवश्यक उपाय किए जा रहे हैं। इसके साथ ही सीएबीई की तीन स्थायी समितियां बनाए जाने का निर्णय किया गया है -

1. नई शिक्षा नीति को लागू कराने को विशेष आवश्यकता सहित बच्चों एवं युवाओं के लिए सन्निकहित शिक्षा हेतु स्थायी समिति,
2. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को निर्देश देने के लिए साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा पर स्थायी समिति,
3. बच्चों की शिक्षा, बाल विकास, पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न योजनाओं को ध्यान में रखते हुए बाल विकास प्रयासों के समन्वयन और एकीकरण मामलों के लिए एक स्थायी समिति।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई), 1986 में यह प्रस्तावित किया गया था कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था विकसित करने का एक साधन होना चाहिए जो भारतीय संविधान में राष्ट्रीय निर्माण

के 'दर्शन' को अपनी आधार भूमि माने। कार्ययोजना (पी.ओ.ए.), 1992 ने प्रासंगिकता, लचीलेपन और गुणवत्ता के तत्वों पर जोर देते हुए इसके दायरेको थोड़ा और विस्तृत किया। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की कार्यकारिणी ने 14 एवं 19 जुलाई, 2004 की बैठकों में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को संशोधित करने का निर्णय लिया। सामाजिक न्याय और समानता के संवैधानिक मूल्यों पर आधारित एक धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक और बहुलतावादी समाज के आदर्श से प्रेरणा लेते हुए इस दस्तावेज़ में शिक्षा के कुछ व्यापक उद्देश्य चिुति किए गए हैं। इनमें शामिल हैं विचार और कर्म की स्वतंत्रता, दूसरों की भलाई और भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता, नयी स्थितियों का लचीलेपन और रचनात्मक तरीके से सामना करना, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी की प्रवृत्ति और आर्थिक प्रक्रियाओं तथा सामाजिक बदलाव में योगदान देने के लिए काम करने की क्षमता। अगर शिक्षा को जीने के लोकतांत्रिक तरीकों को सुदृढ़ करना है तो उसे स्कूल में जाने वाली पहली पीढ़ी की उपस्थिति का भी ध्यान रखना ही होगा जिसका स्कूल में बने रहना उस संविधान संशोधन के चलते अनिवार्य हो गया है जिसने आरंभिक शिक्षा को हर बच्चे का मौलिक अधिकार बना दिया है। संविधान के इस संशोधन से हम पर यह ज़िम्मेदारी आ गई है कि हम सारे बच्चों को जाति, धर्म संबंधी अंतर, लिंग और असमर्थता संबंधी चुनौतियों से निरपेक्ष रहते हुए स्वास्थ्य, पोषण और समावेशी स्कूली माहौल मुहैया कराएँ जो उनको शिक्षा ग्रहण में मदद पहुँचाएँ तथा उन्हें सशक्त बनाएँ। हमारे शैक्षिक उद्देश्यों और शिक्षा की गुणवत्ता में आज गहरी विकृति आ गई है, इसका प्रमाण है यह तथ्य कि शिक्षा बच्चों और उनके माँ-बाप के लिए तनाव और बोझ का कारण बन गई है। इस विकृति को दुरुस्त करने के लिए पाठ्यचर्या 2005) के इस दस्तावेज़ ने पाठ्यचर्या निर्माण के पाँच निर्देशक सिद्धांतों का प्रस्ताव रखा है :

- (1) ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना;
- (2) पढ़ाई रटत प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना;
- (3) पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि पाठ्यपुस्तक—केंद्रित बन कर रह जाए;
- (4) परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना; और
- (5) एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य—व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हों।

42वें संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में 'समाज' के विशेषण के रूप में 'धर्म—निरपेक्ष' शब्द जोड़ दिया गया। 'धर्म—निरपेक्षता' की अवधारणा संविधान में प्रयुक्त 'विश्वास, धर्म उपासना की स्वतन्त्रता' की पदावली में अन्तर्निहित है। प्रस्तुत संशोधन द्वारा उसे और स्पष्ट किया गया है। धर्म—निरपेक्षता राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है, जो किसी धर्म विशेष को राज्य—धर्म के रूप में मान्यता नहीं प्रदान करता है। यह ऐसा समाज है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को मानने, आचरण करने तथा प्रचार करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। इस प्रकार समाज—व्यवस्था सर्व धर्म सद्भाव पर आधारित है। कोई भी देश केवल किसी आदर्श के सामने रखने मात्र से उस आदर्श को ग्रहण किया हुआ नहीं माना जा सकता। आदर्श ग्रहण के लिये, आदर्श के अनुरूप नागरिकों के व्यवहार में रूपान्तरण करना होगा। व्यवहार—रूपान्तरण के लिये शिक्षा एक सशक्त साधन है।

पावर के अनुसार , “शिक्षा के प्रजातंत्र की कभी-कभी इस प्रकार से व्याख्या की जाती है कि सभी लोगों के सभी बच्चों को शैक्षिक अवसर प्राप्त हो और वे उन सामाजिक भेद-भावों में जो कुछ शिक्षा प्रणालियों में शैक्षिक प्रगति में अवरोधक होते हैं, के बिना विद्यालयों में पढ़ने के लिए उपस्थिति हों।

जनतंत्रीय शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षा से है, जिसकी व्यवस्था जनतंत्र के उपर्युक्त सिद्धांतों पर होती है। अर्थात् जिस शिक्षा का उद्देश्य पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, विद्यालय, प्रबन्धन आदि सभी अंग जनतंत्रीय सिद्धांतों के आधार पर बने होते हैं, उसे जनतंत्रीय शिक्षा की संज्ञा दी जाती है।

भारतीय जनतन्त्र में शिक्षा

जनतन्त्र राज्य में पाठ्यक्रम की रचना जनतन्त्रीय आदर्शों एवं मूल्यों को प्राप्त करने के लिए की जाती है। अतः जनतन्त्रीय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन विषयों को मुख्य स्थान दिया जाता है जिनके अध्ययन से बालकों में उत्तम मनोवृत्तियाँ, उत्तम अभ्यास तथा योग्यता एवं सूझ-बूझ विकसित हो जायें और वे सच्चे नागरिक बनकर सफल जीवन व्यतीत कर सकें। इस दृष्टि से जनतन्त्रीय पाठ्यक्रम निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित होता है –

- 1) लचीलापन
- 2) क्रिया पर बल
- 3) बहुमुखी
- 4) व्यावसायिक आवश्यकताओं की व्यवस्था
- 5) सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति
- 6) अवकाश काल की क्रियाओं को स्थान

भारतीय जनतन्त्र को सफल बनाने के लिए माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भारत की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्यों की चर्चा की है –

- 1) **जनतान्त्रिक नागरिकता का विकास** – भारतवर्ष एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है। इसे सफल बनाने के लिए देश के प्रत्येक नागरिक को सच्चा, ईमानदार तथा कर्मठ नागरिक बनाना परम आवश्यक है। चूँकि आज के बालक कल के नागरिक बनेंगे, इसीलिए प्रत्येक बालक में जनतान्त्रिक नागरिकता का विकास करना भारतीय शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है। वस्तुस्थिति यह है कि जनतन्त्र में नागरिकता एक प्रकार की चुनौती होती है। इस चुनौती का सामना करने के लिए प्रत्येक बालक में उसकी प्रकृति के अनुसार ऐसे बौद्धिक, सामाजिक तथा नैतिक गुणों को विकसित करना परम आवश्यक है, जिनके आधार

पर वह नागरिक के रूप में देश की राजनीति, सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक सभी समस्याओं के विषय में स्पष्ट रूप से चिन्तन करके अपना निजी निर्णय ले सके और उन्हें सुलझा सके। इन सभी शक्तियों को विकसित करने के लिए बालकों का बौद्धिक विकास होना चाहिये। बौद्धिक विकास के होन जाने से वे सत्य-असत्य तथा वास्तविकता एवं प्रचार में अन्तर समझते हुए अन्ध-विश्वासों तथा निरर्थक परम्पराओं का उचित विश्लेषण करके अपने जीवन में आने वाली विभिन्न समस्याओं के विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा अपना निजी निर्णय ले सकेंगे तथा हर प्रकार की समस्याओं को आसानी से सुलझा सकेंगे। चूँकि स्पष्ट चिन्तन का भाषण देने तथा लेखन की स्पष्टता से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, इसलिए प्रत्येक बालक को शिक्षा के द्वारा इस योग्य बनाना परम आवश्यक है कि वह अपने भाषणों तथा लेखों के द्वारा अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए जनमत प्राप्त कर सके।

2) कुशल जीवन-यापन कला की दीक्षा – कुशल जीवन-यापन की कला में दीक्षित करना भारतीय शिक्षा का दूसरा उद्देश्य है। कोई भी व्यक्ति एकान्त में रहकर न तो जीवन-यापन ही कर सकता है और न ही पूर्णरूपेण विकसित हो सकता है। व्यक्ति तथा समाज दोनों के विकास के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सह-अस्तित्व की आवश्यकता को समझते हुए व्यावहारिक अनुभवों द्वारा सहयोग के महत्व को मूल्यांकन करना सीखे। अतः सफल सामुदायिक जीवन व्यतीत करने के लिए बालकों में सहयोग, सहनशीलता, सामाजिक चेतना तथा अनुशासन आदि सामाजिक गुणों का विकास किया जाना चाहिये जिससे प्रत्येक बालक एक-दूसरे के विचारों का आदर करते हुए घुलमिल कर रहना सीख जाये।

3) व्यावसायिक कुशलता की उन्नति – जनतन्त्र की सफलता कुशल व्यावसायियों तथा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नागरिकों पर निर्भर करती है। अतः भारतीय शिक्षा का तीसरा उद्देश्य बालकों में व्यावसायिक कुशलता की उन्नति करना है। ध्यान देने की बात है कि व्यावसायिक कुशलता के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण परम आवश्यक है। अतः बालकों के मन में आरम्भ से ही श्रम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करनी चाहिये, हस्तकला के कार्य पर बल देना चाहिये तथा पाठ्यक्रम में विभिन्न व्यवसायों को सम्मिलित करना चाहिये जिससे प्रत्येक बालक अपनी रुचि के अनुसार उस व्यवसाय को चुन कर उसमें उचित प्रशिक्षण प्राप्त कर सके जिसे वह अपने आगामी जीवन में अपनाना चाहें। इससे हमें विभिन्न व्यवसायों के लिए कुशल कारीगर भी प्राप्त हो सकेंगे तथा औद्योगिक प्रगति के कारण देश भी धनधान्य से परिपूर्ण हो जायेगा।

4) व्यक्तित्व का विकास – जनतन्त्र में प्रत्येक बालक को सृष्टि की अमूल्य एवं पवित्र निधि समझा जाता है। इस दृष्टि से प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व का आदर करना परम आवश्यक है। अतः भारतीय शिक्षा का चौथा उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का विकास करना है। इस उद्देश्य के अनुसार बालकों को क्रियात्मक कार्यों को करने के लिए प्रेरित करना चाहिये जिससे उनमें साहित्यिक, कलात्मक तथा

सांस्कृतिक आदि विभिन्न प्रकार की रुचियों का निर्माण हो जाये। रुचियों के विकसित हो जाने से बालकों को आत्माभिव्यक्ति, सांस्कृतिक तथा सामाजिक सम्पत्ति की प्राप्ति, अवकाश काल के सदुपयोग करने की योग्यता तथा चहुँमुखी विकास में सहायता मिलेगी। इस दृष्टि से बालकों के विकास हेतु उन्हें रचनात्मक क्रियाओं में भाग लेने के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान किये जाने चाहिये।

5) नेतृत्व के लिए शिक्षा – जनतन्त्र सफल बनाने के लिए योग्य, कुशल एवं अनुभवी नेताओं की आवश्यकता होती है। अतः नेतृत्व की शिक्षा प्रदान करना भारतीय शिक्षा का पाँचवाँ महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बालकों में उचित शिक्षा द्वारा अनुशासन, सहनशीलता, त्याग, सामाजिक समस्याओं की समझदारी तथा नागरिक एवं व्यावहारिक कुशलता को विकसित करना चाहिये यही बालक बड़े होकर नागरिक के रूप में देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में सफल नेतृत्व कर सकें।

4.6 अधिगम क्रियाकलाप

1^० राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा (2005) के महत्वपूर्ण पहलुओं पर कक्षा में एक चर्चा आयोजित कीजिये।

बोध प्रश्न

टिपण्णी

क) अपने उत्तर नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए.

[1] अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइये.

4^० राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा (2005) निर्माण के पाँच निर्देशक सिद्धांत कौन से हैं

.....

.....

.....

.....

.....

4.7 सारांश

भारत एक उभरता हुआ राष्ट्र-राज्य है. इसकी संवैधानिक संरचना संघीय है. और यह विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र भी है.. लोकतंत्र में सभी नागरिकों को बराबर अधिकार दिए जाते हैं. धर्म जाती लिंग के आधार पर उनमें भेदभाव नहीं किया जाता है. व इसी के आधार पर देश में सभी के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जाती रही है प्रजातंत्रीय व्यवस्था में शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता है। अतः जनतंत्रीय शिक्षा मानव से समानता और स्वतंत्रता की भावना के विकास पर बल देती है। प्रजातंत्रीय शिक्षा बालकों की न्यूनतम आवश्यकताओं का ज्ञान कराने वाली, सत्य एवं असत्य में अंतर को स्पष्ट करके निष्कर्षों पर पहुंचाने वाली, सामाजिक परिवर्तनों के अनुसार व्यक्ति में परिवर्तन करने वाली होती है। जनतंत्रीय शिक्षा व्यक्ति में स्वतंत्र विचारधारा, समाज में कल्याण की भावना, दूसरे के दृष्टिकोण, सहिष्णुता, सच्चरित्रता तथा अन्य मानवीय गुणों का विकास और जनतंत्रीय आदर्शों में आस्था उत्पन्न करती है। इस संदर्भ में जॉन कीवी ने लिखा है कि “प्रजातंत्र में ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए, जो व्यक्ति की रुचियों को सामाजिक कार्यों एवं संबंधों में उत्पन्न कर सकें और बिना किसी अव्यवस्था के सामाजिक परिवर्तन ला सकें।” भारतीय संविधान के प्रावधानों के अनुसार भारत में धर्मनिरपेक्षता लागू करने के लिए शैक्षिक संस्थाओं में उपयुक्त वातावरण बनाने के भरपूर प्रयास किये जा रहे हैं। बालकों को समाज व राष्ट्र के महापुरुषों के उदाहरण दिए जाएं। विभिन्न धार्मिक सद्भाव को बढ़ाने वाली ऐतिहासिक घटनाओं का शिक्षा में समावेश किया जाए। छात्रों में सभी धर्मों के प्रति सम्मान का भाव विकसित किया जाए व सहिष्णुता को प्रोत्साहन दिया जाए। धर्मनिरपेक्ष व्यावहारिक दृष्टिकोण हो। धर्मनिरपेक्षता अति उच्चस्तरीय धार्मिक व्यापकता तथा सहिष्णुता है, जो किसी संकीर्ण धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित न होकर सहनशीलता, स्वतंत्रता, धैर्य, मानवीयता व सार्वभौमिक भातृत्वभाव पर आधारित है। शिक्षा के माध्यम से यही गुण बालकों एवं समाज के व्यक्तियों में समायोजित करने होंगे। शिक्षा में पाठ्यक्रम, व्यवस्था तथा शैक्षिक क्रियाओं का नियोजन इस प्रकार किया जाता है कि वे संविधान की इस अनुकूलता को बनाए रखें। धर्मनिरपेक्षता राष्ट्रीय व्यवहार होना चाहिए और प्रत्येक नागरिक इस विचार को इस तरह आत्मसात करें कि यह उनका जीवन दृष्टिकोण बन जाए व धर्म के आधार पर आपास में द्वेष न रहे। इसकी व्यवस्था शिक्षा द्वारा की जाए।

4०8 प्रगति की जांच

1 - अरस्तु

2- जनतन्त्र की मूल विशेषताएं

- स्वतंत्रता
- समानता
- बंधुत्व
- न्याय

3 - अनुच्छेद (28) के अनुसार

4. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (2005) निर्माण के पाँच निर्देशक सिद्धांत

- (1) ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना;
- (2) पढ़ाई रटत प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना;
- (3) पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि पाठ्यपुस्तक—केंद्रित बन कर रह जाए;
- (4) परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना; और
- (5) एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य—व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हों।

4.9 सन्दर्भ सूची

NCERT. National Curriculum Frameworks, 2005, NCERT New Delhi

हेल्ड डी. (1984), 'सेंट्रल परस्पेक्टिव ऑन मॉडर्न स्टेट' जी. मैक्लेनॉन, डी. हेल्ड एवम् एस. हॉल (संपा.) द आइडिया ऑफ मॉडर्न स्टेट (मिल्टन केयन्स: ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस)

शैलेन्द्र सागर (2008) : राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, अटलांटिक प्रकाशन

<https://books.google.co.in/books?isbn=812690951X>

